आत्मज्ञान के हीरे-मोती

स्वामी निरंजन

ॐ

शान्ति पाठ

श्रीगुरु परमात्मन नमः

ॐ सह नाभवतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

हे आत्म स्वरूप परमात्मा ! आप हम वक्ता और श्रोता, आचार्य और मुमुक्षु दोनों की रक्षा करें । हम दोनों का साथ साथ योगक्षेम वहन करे । हम दोनों साथ साथ विद्या से आने वाले सामर्थ्य का सम्पादन करें । हम दोनों का प्राप्त ज्ञान तेजस्वी हो और हम परस्पर किसी कारण से द्वेष न करें । हमारे त्रिविध ताप की शान्ति हो।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।

कठोप. १ । ३ । १४

अरे ! अविद्या में पड़े अनादि जीवों ! अपने देहाभिमान से उठो एवं अपने नित्य, शुद्ध, द्रष्टा, साक्षी आत्मभाव में जागो । अतः अपने परमात्म स्वरूप को भली प्रकार जानने के लिये किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाओ ! जैसे छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है उसी तरह तत्त्वज्ञानी पुरुष इस आत्माको जानने का मार्ग विवेक, वैराग्य बिना कठिन सा बतलाते हैं ।

ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा,
परत खगेश लगे नहि बारा ।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ।। ११ केनोप. ।।

जिस ब्रह्मवेत्ता ने अपने नेत्र का विषय रूप दर्शन की तरह ब्रह्म को सूर्य, चन्द्र, मनुष्य की तरह दृश्य रूप नहीं जाना है, उसी ज्ञानी को ब्रह्म आत्म रूप से विदित है । जिस अज्ञानी ने ब्रह्म को सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, मनुष्यादि दृश्य विषय की तरह इन्द्रियों से जाना है वस्तुतः वह ब्रह्म आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता है । क्योंकि ब्रह्म द्रष्टा होने से दृश्य रूप से जानने का दावा भरने वाले अहंकारियों से अनजाना ही है । और जो ब्रह्म को दृश्य रूप में नहीं जानते हैं बल्कि द्रष्टा स्वआत्म रूप ही जानते हैं उन्हीं ने वास्तव में परमात्मा को यथार्थ रूप से जाना है । तात्पर्य यह है कि विद्वानों ने वास्तव में स्वयं प्रकाश परमात्मा को इन्द्रियों का दृश्य विषय नहीं माना है ।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।। गीता ७ / १९

बहुत जन्मों के निष्काम कर्म एवं भक्ति के फल स्वरूप ब्रह्म जिज्ञासा जाग्रत होने पर अन्तके जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, 'सब कुछ परमात्मा ही है' इस प्रकार जो अपने आत्मा को जानता है । वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है एवं उसका मिलजाना आश्चर्य रूप ही जानो ।

तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।। ५ ईशा. उप.

यह आत्मा शरीर उपाधि रूप से चलता है और निरुपाधिक रूप से वह अस्ति, भाति, प्रिय से अचल रहता है । यह आत्मा अज्ञानी के लिये दूर से दूर रहता है इसलिए वे तीर्थों, पहाड़ों, कन्दराओं, जंगलों, ध्यान, समाधि में खोजते रहते हैं किन्तु यह परमात्मा ज्ञानियों के लिये निकट से निकट अर्थात प्राप्त आत्म स्वरूप ही है । वह परमात्मा संसार के भीतर एवं नाम, रूप संसार के बाहर भी है ।

बुद्धि का साक्षी आत्मा ही ब्रह्म है । हे नचिकेता ! तूने जिस ब्रह्म के लिये प्रश्न किया था यह वही ब्रह्म है और वह तू स्वयं ही है ।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।। कठोप. २/१/४

जो जाग्रत एवं स्वप्न के समस्त स्थूल, सूक्ष्म व्यवहार एवं भोग के होने न होने को जानता है तथा उस महान् और व्यापक मैं आत्मा को देह संघात् एवं उनके धर्म से पृथक् प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष देहाभिमानी अज्ञानी पुरुष की तरह शोक नहीं करता है ।

यदवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योःस मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।। कठोप २/१/१०

जो चैतन्य आत्म सत्ता इन समस्त देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि में भास रहा है , वही ब्रह्म देह से बाहर भी अस्ति, भाति, प्रिय रूप में है । ऐसे अखण्ड आत्मा के होने पर भी जो अज्ञानी इस आत्मा में भेद देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को बारम्बार प्राप्त करता है ।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ।। २/१/११ कठोप.

मल, विक्षेप रहित शुद्ध मन के द्वारा ही इस ब्रह्मतत्त्व को किसी सद्गुरु की कृपा से आत्म रूप से जानना चाहिये । इस ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । जो पुरुष इस अखण्ड ब्रह्मसत्ता में भेद देखता है वह मृत्यु को बारम्बार प्राप्त करता रहेगा ।

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन् ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ।। २/२/५ कठोप.

जो अकेला ही समस्त जीवों की उनके कर्मानुसार कामनाएँ पूर्ण करता है, ऐसे सर्वान्तरात्मा को जो मुमुक्षु अपने बुद्धि के प्रकाशक, साक्षी, आत्मा रूप से, मैं रूप में देखते हैं, उन्हीं को नित्यानन्द की प्राप्ति होती है । अन्य को शाश्वत शान्ति कभी नहीं मिल सकती जो परमात्मा को अपने से भिन्न अन्य रूप में मानते हैं ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

२/२/१५ कठोप,

उस आत्म रूप ब्रह्म को सूर्य का प्रकाश प्रकाशित नहीं करता है । उसे तारे, चन्द्रमा विद्युत भी प्रकाशित नहीं करते हैं और यह बिजली भी वहां नहीं प्रकाशित होती है तब इस बेचारे अग्नि की तो सामर्थ्य ही क्या ? इस आत्मा के तेज से ही सब अनात्म ब्रह्मादिक लोक प्रकाशित होते हैं तथा उसके प्रकाश से ही तो यह सब अनित्य देह संघात् प्रकाशित होता है ।

अवधूतोपनिषत्

अनुतिष्ठन्तु कर्माणि परलोकयियासवः ।
सर्वलोकात्मकः कस्मादनुतिष्ठामिकिं कथम् ।।१२।।

जिन्हें स्वर्ग वैकुण्ठादि लोकों के दर्शन एवं सुख की कामना है वे अनेक प्रकार के ब्रत, उपवास, पूजा, पाठ, यज्ञः, जप, तपादि कर्मानुष्ठान भली प्रकार करे । मैं तो अखण्ड,अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप हूँ, मैं ही सर्व हूँ, तब मैं किससे किसके लिये किसका अनुष्ठान करूँ । तात्पर्य यह है कि मेरे लिये किंचित् भी कर्तव्य नहीं है । **'तस्य कार्यं न विद्यते'**

विक्षेपो नास्ति यस्यान्मे न समाधिस्ततो मम ।
विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्या द्विकारिणः ।।

अवधूत. उप. २१

केनोपनिषत्

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ४ ।।

जो परमात्मा वाणी से प्रकाशित नहीं होता । किन्तु जिससे वाणी प्रकाशित होती है, उसी को तुम ब्रह्म जानो । जो देश, काल, वस्तु से परिच्छिन्न नाम, रूप धारी भगवान की अज्ञानी लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म का वास्तविक रूप नहीं है, तुम उसकी ब्रह्म रूप से उपासना कभी मत करना । ब्रह्म कभी यह रूप से, इदम् रूप से दृष्टि का विषय अनात्म पदार्थों की तरह नहीं है ।

यन्मनसा न मनुते येनाऽऽहुर्मनोमतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ५ ।।

इस आत्म स्वरूप परमात्मा का कोई भी साधक संसारी वस्तुओंके चिन्तन, मनन की तरह मन से मनन नहीं करता किन्तु यह मन जिस चैतन्य आत्मशक्ति का अंश लेकर मनन करने में समर्थ होता है, उसीको तुम ब्रह्मजानो । जो अज्ञानी जन नाम, रूप, देश, काल, वस्तु परिच्छिन्न भगवान की उपासना करते है वह ब्रह्म का वास्तविक रूप नहीं है ।

जिसे कोई भी अपने अशुद्ध मन से नहीं जान सकता है, परन्तु जिस चैतन्य आत्मशक्ति द्वारा यह मन दृश्य जगत् के विषयों का मनन कर ग्रहण त्याग करता है, वह ब्रह्म है । अज्ञानी साधक, भक्त मन को रोककर जिस कल्पित नाम, रूप वाले परमात्मा का भजन करते है, वह ब्रह्म नहीं है । अतः तुम अपने अन्तःकरण की समस्त वृत्तियों के साक्षी भूत परमात्मा को 'वह मैं हूँ, सोऽहम्' इस प्रकार अपरोक्ष रूप से ही जानो । ऐसा जानने से ही तुम अमृत तत्त्व को सहज प्राप्त हो जाओगे । **एतद्विदूरमृतास्ते भवन्ति** ।

मुण्डकोपनिषत्

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

१।२।१२

हे मुमुक्षुओं ! कर्म से प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोकों को विवेक द्वारा परीक्षा कर भली प्रकार नाशवान जानलें । फिर कर्म, उपासना से उपराम होकर नित्य प्राप्त आत्मा के ज्ञानार्थ किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये । उस समय आश्रम एवं गुरु उपयोगी वस्तु लेजाकर अपने कल्याणार्थ प्रार्थना करें । क्योंकि अनित्य साधन रूप कर्म उपासना द्वारा नित्य पदार्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है ।

असतो मा सद्गमय ! तमसो मा ज्योतिर्गमय ! मृत्योर्मा अमृतं गमय !

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।। २/२/८

जो उस निरुपाधिक ब्रह्म को आत्मा रूप से जान लेता है उसके आत्मा अनात्मा अध्यास याने जड़-चेतन रूप ग्रन्थि हृदय से टूट जाती है । अब उसके लिये पाने योग्य कुछ ज्ञेय पदार्थ शेष नहीं रहता है । और इस पुरुष के समस्त संचित् कर्म एवं प्रारब्ध सहित क्रियमाण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं । मैं आत्मा हूँ इस बोध के बाद देहभाव ज्ञानी का नहीं रहने से प्रारब्ध कर्म भी समाप्त - सा हो जाता है । लोक दृष्टि में लेशाविद्या से शरीर व कर्म भोग होते दिखाई पड़ता है ।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं बह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।। २ । २ । ११

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च । गीता - १०/२०

यह अमृत स्वरूप ब्रह्म ही सबके आगे है, पीछे है, दायें है

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति ।

तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो ऽमृतो भवति ।।

३/२/९

अभी भी जो कोई उस परमब्रह्म को मैं रूप जान लेता है वह ब्रह्म ही हो जाता है । उस ब्रह्मज्ञानी के कुल में ब्रह्म को जाने बिना कोई नहीं होता है । वह धर्म-अधर्म, संयोग-वियोग, पाप-पुण्य के भी पार हो जाता है एवं आत्मा और अनात्मा के अध्यास रूप हृदय ग्रन्थि से छूटकर अमर हो जाता है ।

सोऽयमात्मा – चतुष्पाद स आत्मा स विज्ञेय 'अयमात्मा ब्रह्म'

यह अपरोक्ष आत्मा ही ब्रह्म है । वही जानने योग्य है ।

जो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय इन चार पाद रूप कही जाती है वह आत्मा है और यह आत्मा ही ब्रह्म है ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्व मिदं विभाति ।।

२/२/१०

इस आत्म स्वरूप ब्रह्म के वहाँ, यह दृश्य जगत् को प्रकाशित करने वाला सूर्य प्रकाशित नहीं होता । यहाँ अन्धकार में प्रकाशित होने वाला चन्द्रमा एवं तारे भी वहाँ प्रकाशित नहीं होते । वहाँ यह बिजली नहीं चमकती है तब भला यह अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकेगी ? इस आत्मदेव के प्रकाश से ही यह सब भीतर बाहर के दृश्य प्रकाशित होते हैं । इस स्वयं प्रकाश आत्मदेव के प्रकाश से ही यह शरीर के भीतर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, भूख-प्यास, सुख-दुःखादि एवं बाहर समस्त दृश्य जगत् प्रकाशित हो रहा है ।

तैतरीयोपनिषत्

ब्रह्मविदाप्नोति परम्

ब्रह्मज्ञानी परम तत्त्व को प्राप्त करता है ।

यतो वाचा निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न विभेति कदाचन ।। २/४/१

जहां से मन के सहित वाणी उस आत्मदेव को बिना प्राप्त किये निराश हो लौट आती है । उस ब्रह्म को आत्मा रूप से जानने वाला ज्ञानी किसी से भी नहीं डरता है ।

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् । आनंदाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति । आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। ३/६/१

आनन्द ही ब्रह्म है ऐसा जानो । क्योंकि आनन्द से ही यह सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीवित रहते हैं और मरकर पुनः आनन्द में ही प्रविष्ट होते हैं ।

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथि देवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । १/११/२

हे वत्स ! तू अपने पिता माता व आचार्य के प्रति देव बुद्धि कर अर्थात तू इन सभी की देवता की तरह श्रद्धा भक्ति करना । उनमें वेद विरुद्ध असामाजिक कर्म जो दिखाई पड़े उनको ग्रहण मत करना । बल्कि जो शास्त्र समस्त शुभ चरित्र दिखाई पड़े उन्ही का तू आचरण करना ।

■■■

पर निश्चल स्मृति होती है । तथा स्मृति की शुद्धि होने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों का नाश हो जीव मुक्त हो जाता है ।

प्रजापति द्वारा जीवों के कल्याणर्थ घोषणा

जो आत्मा पाप से रहित, बुढ़ापे से रहित, मृत्यु से रहित, शोक से रहित, भूख-प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है । उसकी सद्गुरु एवं सद्शास्त्रों के उपदेश द्वारा अच्छी तरह खोज कर आत्मा की प्राप्त करलेना चाहिये । मृत्यु से पूर्व यह आत्मा विशेष रूप से जानने योग्य है । जो इस अमृत आत्मतत्त्व को वह ''ब्रह्म मैं हूँ'' इस प्रकार जान लेता है वह विद्वान् सम्पूर्ण लोकों को एवं समस्त कामनाओं को प्राप्त करलेता है । ८/७/२

यह शरीर निश्चय ही मरणशील है क्योंकि यह मृत्युसे प्रति श्वांस ग्रस्त है । यह शरीर मरणशील होने पर भी अमृत आत्मा को जानने का मुख्य साधन रूप होने से सर्वथा वन्दनीय है । यह देव दुर्लभ ईश्वर कृपा से प्राप्त शरीर के मृत्यु से पूर्व उस अमृत आत्मा को जान लेना ही जीव का चरम लक्ष है जिसके फल स्वरूप यह जीव सर्वदा के लिये इस जन्म-मरण रूप सृष्टि चक्र से मुक्त हो जाता है । शरीर रहते यह आत्मा निश्चय ही प्रिय, अप्रिय, इष्ट, अनिष्ट से ग्रस्त रहता है । इसके विपरित सुषुप्ति अवस्था में आत्मा अशरीरी होने से उसे प्रिय, अप्रिय, इष्ट, अनिष्ट, सुख-दुःखादि द्वन्द्व स्पर्श नहीं कर सकते । आत्मा का वास्तविक स्वरूप तो निराकार अशरीरी ही है शरीर की प्रतीति तो ओपाधिकी मात्र है । शरीर आत्मा की उपलब्धि का स्थान है । ८/१२/९

अत्यन्त मलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः ।
अभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधियते ।।

मुक्तिकोपनिषत् २/६७

यह देह तो अत्यन्त मलिन है और मैं देही आत्मा तो नित्य अत्यन्त ही

बृहदारण्यक उपनिषत्

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतंगमय ।। १/३/२८

हे गुरुदेव ! मुझे असत से सत्य की ओर, अज्ञान अन्धकार से ज्ञान प्रकाश की ओर तथा मृत्यु रूप शरीर से अमृत आत्मा की ओर दृष्टि कराने की कृपा करें ।

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् । १।४।।१०

आज भी इस प्रकृत ब्रह्म को जो इस प्रकार जानता है कि 'वह ब्रह्म मैं हूँ', मैं ही ब्रह्म हूँ तो वह इस विज्ञान से सर्वरूप हो जाता है । ऐसे तत्त्ववेत्ता के पराभव करने के लिये किसी भूत, प्रेत, देवता आदि में सामर्थ्य नहीं है । क्योंकि वह तत्त्वज्ञानी, आत्मवेत्ता सभी देवताओं की आत्मा हो जाता है ।

यह आराध्य देवता भिन्न है और मैं इन आराध्य देवता से भिन्न हूँ इस प्रकार से जो अपने से भिन्न देवता की उपासना करता है वह अज्ञानी परमार्थ तत्त्व को नहीं जानता है । जैसे लोक में भारवाही पशु होता है वैसे ही वह भेदवादी देवताओं का पशु है । जैसे पशु अपने मालिक का भार वहन करते हैं, वैसे ही अज्ञानी देवताओं को हविष्यान्न प्रदान करके देवताओं की सेवा करते हैं । जैसे किसान को उन पशुओं में से कोई एक पशु का हरण कर लेने से शोक व्याप्त हो जाता है, फिर भला अनेक पशुओं का अपहरण होने पर तो कहना ही क्या ?

देवताओं को भी इसी प्रकार यह बात सर्वथा प्रिय नहीं कि उनकी सेवा करने वाले मनुष्य ब्रह्मस्वरूप को जानलें।

न दृष्टेर्द्रष्टारं पश्येर्न श्रुतेः श्रोतारं श्रृणुयान्न मतेर्मन्तारं मन्वीथा न

हे गार्गी ! यह अक्षर आत्मा अन्य विषयों की तरह किसी की दृष्टि का विषय नहीं होता किन्तु स्वयं दृष्टि रूप होने से द्रष्टा है वैसे ही यह अक्षर स्वरूपात्मा किसी के कान का विषय शब्द रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता किन्तु स्वयं श्रुति रूप होने से श्रोता है । यह आत्मा मन द्वारा मनन का विषय नहीं है किन्तु मतिरूप होने से मन्ता है । वह आत्मा किसी की बुद्धिका विषय नहीं है किन्तु स्वयं अविज्ञात होता हुआ भी सबका विज्ञाता है ।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः । ३/८/१०

हे गार्गी ! जो कोई निजात्म स्वरूप को मैं रूप से बिना जाने यहां से मर कर चला जाता है, वह मूर्ख, दीन एवं कृपण है । उसके द्वारा किये गये बहुत प्रकार के यज्ञ, दान, तप आदि के फल स्वरूप देवलोक से पुण्य समाप्ति पर पुनः उसे मरकर इस जन्म-मृत्यु रूप संसार बन्धन को प्राप्त होना पड़ता है । पर हे गार्गी ! जो इस अक्षर स्वरूप आत्मा को मैं रूप से जानकर इस लोक से मरकर जाता है वह संसार बन्धन से मुक्त हुआ पुरुष ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) है ।

अपि चेत्सु दुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि सः ।। गीता ९ / ३०

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त हो कर मुझको आत्म रूप से अर्थात् सोऽहम् रूप से चिन्तन करता है तो वह वास्तव में साधु ही मानने योग्य है क्योंकि अब उसने अपने को देह से पृथक् मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ इस प्रकार का दृढ़ निश्चय कर लिया है ।

न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । ४/३/२३

द्रष्टा की दृष्टि का कभी नाश नहीं होता क्योंकि द्रष्टा अविनाशी होने से उसकी दृष्टि भी नित्य है ।

तत्केन कं भिवदेत
तत्केन कं श्रृणुयात
तत्केन कं मन्वीत
तत्केन कं स्पृशेत
तत्केन कं विजानीयात्

येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् ।

हे मैत्रेयी ! जिस विद्वान् की दृष्टि में सब एक आत्मा ही प्रतीत हो रहा है, वहां वह किससे किसको देखे, सूंघे, रसले, कहे, छूवे, एवं जाने ? विज्ञाता को किससे जाने ? जिसके द्वारा इस समस्त दृश्य रूप संसार को जाना जाता है उसे भला किसके द्वारा जाने ? अर्थात् उसे अन्य कोई जानने वाला नहीं है ।

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्त द्वयं न चेदवेदिर्महतीविनष्टिः
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ।। ४/४/१४

हम इस अनर्थ पूर्ण शरीर में रहते हुए ही यदि इस सत्य अमृत आत्मा को 'मैं यह आत्मा हूँ' इस प्रकार जानलेते हैं तो हम कृतकृत्य हो जाते हैं । क्योंकि आत्म की उपलब्धि ही सच्ची सिद्धि है इस आत्मा को जानलेने के बाद जीव केलिये किसीभी प्रकार की कर्तव्यता शेष नहीं रहती है ऐसा श्रुति की घोषणा है **'तस्स कार्यं न विद्यते'** गीता ३/१६

और इस नित्य प्राप्त अपने आत्म स्वरूप को न जाना तो इससे बड़ी विश्व में हमारे लिये कोई क्षति नहीं होगी । आत्मा को न जानना ही सबसे बड़ी क्षति है जिसकी पूर्ति इस जीवन के अतिरिक्त किसी भी अन्य योनि में नहीं हो सकेगी । जो साधक गुरु कृपा से इस आत्मा को मैं आत्मा हूँ इस रूप से अपरोक्ष ज्ञान कर लेते हैं वे आत्म साक्षातकार के फलस्वरूप अमर हो जाते हैं । इस निष्ठा को प्राप्त न करनेवाले देहाभिमानी जन्म-मरण को ही प्राप्त होते रहते हैं ।

ज्ञाननैव संसार विनाशोनैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरु गच्छेद्यथाविधि ।।३५ भावो.उप.

श्वेताश्वतरोपनिषत्

ज्ञात्वा देवं सर्व पाशाप हानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
१/११

देह स्थित समस्त वृत्तियों के साक्षी आत्मा को जान लेने से सर्व बन्धन कट जाते हैं । क्लेशों के नष्ट होजाने से जन्म – मरण के बन्धन से जीव मुक्त हो जाता है ।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। ३/८

अविद्यासे परे सूर्य के समान तेजस्वी महान् पुरुष को मैं आत्मा रूप से जानता हूँ । इस प्रकार जो उसे आत्मा रूप से जानता है कि वह परमात्मा मैं हूँ वह मृत्यु से पार हो अमृतत्त्व को उपलब्ध हो जाता है । इसके अतिरिक्त मुक्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। ३/१६

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत ।। ३ / १७

वह परमात्मा सब स्थानों पर, सब देहों में हाथ, पैर, आंख, मुख, सिर, कान और नाक वाला है । उसका शरीर नहीं है, किन्तु सब शरीरों में उसकी शक्ति व्याप रही है । वही सब स्थावर जंगम को घेरे हुए है ।

निराकार होने से जो सब इन्द्रियों से रहित होते हुए भी सब इन्द्रियों एवं गुणों को प्रकाशने वाला है । वही सबका प्रभु एवं शासन करता है ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ।। ६/२३

जैसी अज्ञान काल में परमात्मा के कल्पित चित्र, मूर्ति में अपने कल्याणार्थ श्रद्धा, भक्ति, प्रेम होता है, उसी तरह जब जीवन्मुक्ति पाने हेतु जीवित सद्गुरु में भगवान की तरह भक्ति होती है; तब ऐसे अन्तःकरण में गुरु द्वारा परमात्मा का बताया हुआ ज्ञान एवं आत्म भाव जाग्रत होता है। उसी को जीवन्मुक्ति प्राप्त होती है।

एको हंसो भुवनास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।
६/१५

इस देह पुरी के मध्य में साक्षी रूप परमात्मा हृदय रूप सिंहासन पर सर्वदा विराजित रहता है वही कारण कार्य की अभिन्नता के फलस्वरूप जल में भी अग्नि रूप से सन्निविष्ट है। क्योंकि अग्नि का कार्य ही जल है। इसलिए जल कार्य में उसका कारण अग्नि सर्वदा विद्यमान रहती है। जैसे स्वर्ण कारण से अलंकार कार्य कभी पृथक् नहीं रहते। अलंकार रूप में उसका कारण स्वर्ण ही सदा विद्यमान रहता है। इसी प्रकार इस अव्यक्त आत्मा का ही यही व्यक्त रूप शरीर है। इस अमृत सत, आत्मा को मैं रूप से जान कर यह जीव जन्म-मृत्यु रूप संसार चक्र से सदा के लिये मुक्त हो जाता है। इस परमात्मा देव को 'मैं' रूप से, आत्म रूप से जानने के अतिरिक्त प्रमेय रूप से किसी भी इन्द्रिय के द्वारा कभी भी नहीं जान सकेंगे।

यथा रविः सर्वरसान्प्रभुङ्क्ते हुताशनश्चापि हि सर्वभक्षः ।
तथैव योगी विषयान्भुङ्क्त न लिप्यतेपुण्य पापैश्च शुद्धः ।।
६ अवधूतोपनिषद.

जिस प्रकार सूर्य सर्व रसो का आहरण करता है। अग्नि जब कुछ भक्षण करती है। नदी भी अपने में सब गन्दगी बहाती है फिर भी तीनों शुद्ध ही माने जाते हैं इसी तरह आत्मनिष्ठ ज्ञानी महापुरुष किसी भी प्रकार के शुभाशुभ क्रिया द्वारा पुण्य-पाप को प्राप्त नहीं होता है, वह सदा शुद्ध ही

किया जाता है । इसी प्रकार समस्त प्राणियों में ज्ञानरूप एक चैतन्य आत्म तत्त्व ही छिपा है । वह मन से चिन्तन, मनन, निदिध्यासन द्वारा पंचकोश, तीन अवस्था, तीन शरीर का विचार रूप क्रिया द्वारा सतत मन्थन करने से प्रकट हो जाता है ।

ज्ञाननेत्रं समादाय चरेद्वह्नि मतः परम ।
निष्कलं निर्मलं शान्तं तद्ब्रह्माहमिति स्मृतम् ।। (२१)

सद्गुरु से ज्ञाननेत्र प्राप्त करने पर अग्नि के समान तेजस्वी कलारहित निर्मल, शान्त जो ब्रह्म है, वही ब्रह्म मैं हूँ ऐसी भावना करना चाहिये । ऐसी भावना किये बिना मुक्ति पाने का अन्य कोई साधन नहीं है ।

एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः ।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रतत् ।। (१२)

संसार के सभी प्राणियों में यह अपना अखण्ड आत्मा ही सर्वत्र व्याप्त है । जैसे एक ही चन्द्र अथवा सूर्य भिन्न भिन्न जलपात्रों में भिन्न–भिन्न रूप से दिखाई पड़ता है । किन्तु वह खण्ड खण्ड नहीं होता है । अथवा एक ही अखण्ड आकाश भिन्न–भिन्न मकानों के भेद से खण्ड खण्ड दिखाई पड़ता है । किन्तु आकाश का खण्ड विभाजन नहीं होता है एक ही आकाश घट उपाधिसे घटाकाश और मठ उपधिसे मठाकाश नाम से कहा जाता है । इन घट तथा मठ उपाधि से उस आकाश को महाकाश नाम से कहा जाता है किन्तु घट, मठ उपाधि के नाश होने वह महाकाश नाम से रहित एक आकाश ही रहता है ।

इसी प्रकार एक ही परमात्मा अविद्या उपाधि से जीव तथा माया उपाधि से ईश्वर कहा जाता है । अविद्या माया से अखण्ड ब्रह्म सत्ता का अज्ञानी को भेद प्रतीत होता है किन्तु अविद्या माया उपाधि का भागत्याग लक्षणा से बाध करने पर एक अखण्ड ब्रह्म ही शेष रहता है ।

मैत्रेय्यूपनिषत्

अभेद दर्शनं ज्ञानं ध्यानं निर्विषयं मनः ।
स्मानं मनोमल त्यागः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।। २/२

आत्मा परमात्मा को सोऽहम् रूप अभेद जानना यही ज्ञान है । निर्विषय मन करना यही ध्यान है । मन के मल को त्यागना यही स्नान है इन्द्रियों का निग्रह करना यही शौच है ।

उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यं शास्त्र चिन्तनम् ।
अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थ भ्रान्त्यधमाधमा ।। २/२१

आत्म तत्त्व का चिन्तन करना कि वह ब्रह्म मैं हूँ यह सबसे उत्तम चिन्तन है । शास्त्रों को पढ़ते रहना व उसके भावार्थ को ग्रहण न करना मध्यम श्रेणी का चिन्तन है । बिना ध्यान के केवल मन, वाणी से मन्त्र चिन्तन अधम श्रेणी का चिन्तन है । तीर्थों में भ्रमण करना यह अत्यन्त निकृष्ट श्रेणी का साधन माना जाता है ।

अतः तत्त्व ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक साधक को आत्म ज्ञान प्राप्ति के लिये वेदान्त तत्त्व का ही अधिक से अधिक श्रवण, मनन, चिन्तन करने का प्रयत्न करना चाहिये । अन्य उपाय तत्त्वज्ञान के अधिकारी बनाने के साधन है । उसमें सदा बन्धे नहीं रहना चाहिये । तट पर पहुँचने के बाद नौका का क्या प्रयोजन ?

उतीर्णे तु गते पारे नौकायाः किम् प्रयोजनम्

जिस प्रकार नदी पार होने के बाद नौका का उपयोग नहीं रहता । उसी प्रकार ब्रह्म जिज्ञासा जाग्रत होने पर कर्म, उपासना साधन की अपेक्षा नहीं रहती है ।

पाषाण लोहमणि मृण्मय विग्रहेषु
पूजा पूनर्जनन भोगकरी मुमुक्षोः ।

सर्वसारोपनिषत्

नाहं देहो जन्म मृत्यु कुतो में
नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।

नाहं चेतः शोक मोहौ कुतो में
नाहं कर्ता बन्ध मोक्षौ कुतो में ।। ६ ।।

मैं देह नही हूँ फिर मुझे जन्म - मरण कहां है ? मैं प्राण नहीं तो भूख-प्यास मुझे कहां ? मैं मन नहीं तो शोक-मोह मुझे कैसे हो सकते हैं ? मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ तो मुझे बन्ध मोक्ष भी नहीं है ।

श्रवणं तु गुरौः पूर्वं मननं तदनन्तरम् ।
निदिध्यासनमित्येतत्पूर्ण बोधस्य कारणम ।। शुकरहस्योप. २/१३

श्रद्धा भक्ति पूर्वक प्रथम गुरु को धारण कर वेदों के महावाक्यों का श्रवण करे, फिर अभेद की साधक तथा भेद की बाधक युक्तियों द्वारा सुने हुए 'अयमात्मा ब्रह्म', 'तत्त्वमसि' का मनन करे, फिर सजातीय वृत्ति प्रवाह करे एवं विजातीय वृत्ति का तिरस्कार करते रहने से अपने द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप का पूर्ण बोध हो सकेगा ।।

दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत् ।
सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रावलोकिनी ।। तेजोबिन्दु उप. १/२९

आँखों पर जिस रंग के शीशे वाला चश्मा होता है उसी के अनुरूप रंग वाला दृश्य जगत् दिखता है । उसी तरह साधक अपनी दृष्टि को ज्ञानमयी बनाएं और उस दृष्टि से समस्त जगत् को ब्रह्ममय देखें, वही दृष्टि परमादरणीय, परम कल्याणकारी है । केवल नासाग्र को देखने वाली दृष्टि कल्याणकारी नहीं है ।

तावज्जीवो भ्रमत्येवं यावत्तत्त्वं न विन्दति - ध्यान बिन्दु ५०

जीव जबतक अपने द्रष्टा, साक्षी, आत्म स्वरूप को नहीं जानता है

उपासक जिस भाव से उस परमात्मा की भक्ति करता है वह उसी रूप होजाता है, भ्रमर कीट न्यायवत । अतः ब्राह्मण, मुमुक्षु को मैं ही ब्रह्म हूँ ऐसी सदा भावना करनी चाहिए । इस प्रकार की भावना उसे ब्रह्म रूप ही बनादेगी इस में किंचित् भी सन्देह नहीं है।

■■■

यत्र तत्र मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना ।
यथा सर्वगतं व्योम तत्र तत्र लयं गतः ।। ४ /१३

ज्ञानी का शरीर जिस किसी भी प्रकार से जहां कहां भी मृत हो जाए, वह वहां वहां ब्रह्म में ही लीन हो जाता है जैसे घट जहां भी नष्ट हो जाए उसका आकाश उसी स्थान पर महा आकाश में ही लीन हो जाता है ।

ममेति बध्यते जन्तु निर्ममेति विमुच्यते । ४/२०

'यह मेरा है' इस प्रकार मानने से जीव बन्ध को प्राप्त हो जाता है और 'यह मेरा नहीं है' ऐसा जानने से जीव उससे मुक्त हो जाता है ।

यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परम् पदम् । ४/२९

जहाँ जहाँ मन जाता है वहाँ वहाँ परमात्मा है । क्योंकि वह सब देश, काल, वस्तु भेद से रहित अखण्ड है ।

नाहं ब्रह्मेति जानाति तस्य मुक्तिर्नजायते । १/२३

जो जीव ऐसा मानता है कि मैं ब्रह्म नहीं हूँ वह अज्ञानी मुक्त नहीं हो सकेगा । क्योंकि 'यथा मति तथा गति' यह सिद्धान्त है ।

'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार के महावाक्य के अर्थ का विचार करना **श्रवण** कहलाता है । एकान्त स्थान में इन महावाक्यों के अर्थ का अनुसन्धान अपने में करना **मनन** कहलाता है । श्रवण तथा मनन द्वारा निर्णय किये गये तत्त्व में 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस आत्म वस्तु मैं चित्त को एकाग्रता पूर्वक स्थापित करना **निदिध्यासन** है । जब ध्यान और भाव को छोड़ केवल ध्येय में ही अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, ऐसी चित्त वृत्ति का दृढ़ीभूत होना **समाधि** कहलाता है ।

घटे नष्टे तथा व्योम व्योमैव भवति स्वयम् ।
तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित् स्वयम् ।। २३ आत्म उप.

घट नष्ट होने पर घट में स्थित आकाश तत्काल महाकाश रूप ही हो जाता है उसी प्रकार देहभाव के नष्ट होते ही यह जीव तत्क्षण ब्रह्म रूप ही स्वयं शेष रहता है ।

शिखा ज्ञानमयी यस्य उपवीतं च तन्मयम् ।
ब्राह्मण्यं सकलं तस्य नेतरेषां तु किञ्चन् ।।

जिनकी ज्ञानमयी शिखा (चोटी) है, ज्ञान मय ही यज्ञोपवीत है वही वास्तव में ब्राह्मण लक्षण वाला है किन्तु नाम मात्र के चोटी एवं यज्ञोपवीत धारण करने वाले तो थोड़े भी ब्राह्मण नहीं है अर्थात् वे शूद्र ही है ।

ज्ञाने नैव हि संसार विनाशो नैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्व गुरुं गच्छेद्यथाविधि ।। ३५ (रुद्र हृदय. उप.)

संसार बन्धन का नाश तो आत्म ज्ञान अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ भाव से ही होगा । करोड़ों कर्मों के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती । अतः विवेक, वैराग्य, शम, दम, श्रद्धा, तितिक्षा, उपरामता, समाधान युक्त होकर केवल मोक्ष की अभिलाषा रख श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास ज्ञान पाने के लिये स्वयं चला जावे ।

योऽहं सर्वषामधिष्ठाता सर्वेषां च भूतानां पालकः
सोऽहं पृथिवी । सोऽहमापः । सोऽहंवायुः । सोऽहं कालः ।
सोऽहं दिशः सोऽहमात्मा । मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् ।।

भस्मजाबालोपनिषत् ।। २ ।।

जो यह सबका अधिष्ठान है, सब भूत प्राणियों का पालक है, वही मैं पृथ्वी हूँ वही मैं जल हूँ वही मैं तेज हूँ, वही मैं वायु हूँ, वही मैं काल

२०

समस्त वेदान्त के द्वारा जाना जाने वाला मैं ब्रह्म हूँ मैं आकाश वायु आदि जान में आने वाली जड़ वस्तु नहीं हूँ, मैं रूप नहीं हूँ, मैं नाम नहीं हूँ, मैं केवल सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म ही हूँ।

■■■

रहा है ।

ज्ञानयोग पराणां तु पाद प्रक्षालितं जलम् ।
भाव शुद्ध्यर्थमज्ञानां तत्तीर्थं मुनि पुङ्गव ।। ४/ ५६

अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरण शुद्धि के लिये ज्ञानयोग में तत्पर योगियों का चरण अमृत ही सर्व श्रेष्ठ तीर्थ है ।

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाण के सदा ।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।। ४/५७

कल्याणमय परमात्मा इसी देह में सदा विराजमान हैं । उसे न जानकर मूर्ख व्यक्ति तीर्थ, दान, जप, यज्ञ, काष्ठ, पाषाण और धातु मूर्ति में ही परमात्मा को खोजा करता है ।

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः ।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिता ।। ४/५९

ज्ञानीजन अपने आत्मा में ही परमात्मा को सोऽहम् रूप से ध्यान करते हैं। ज्ञानीजन प्रतिमाओं में कभी परमात्मा की भावना रख पूजा नहीं करते हैं । प्रतिमाओं की कल्पना तो अज्ञानी जनों के हृदय में परमात्मा के प्रति श्रद्धा भक्ति भाव जाग्रत करने के लिये की गई है ताकि वे उन कल्पित मूर्तियों के द्वारा भगवान में विश्वास कर सके एवं सत्य परमात्मा की खोज करने की जिज्ञासा करे ।

ना हं देहो न च प्राणो नेन्द्रियाणि मनो नहि ।
सदा साक्षि स्वरूपत्वाच्छि एवास्मि केवलः ।।
एते धीर्या मुनि श्रेष्ठ सा समाधि रिहोच्यतु ।। १०/४-५

मैं देह नहीं हूँ, न मैं प्राण हूँ, न मैं इन्द्रिय हूँ, न मैं मन ही हूँ । मैं तो सदा ही साक्षी रूप होने से केवल हूँ । ऐसी निश्चयात्मिका बुद्धि को ही सहज समाधि, निर्विकल्प समाधि कहते हैं । १०/४/५

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम् ।
आद्यत्रयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम् ।। (सरस्वती रहस्य उप. २४)

ससांर के प्रत्येक पदार्थ में पांच अंश है । उनमें प्रथम तीन अस्ति, भाति, प्रिय ब्रह्म रूप है तथा शेष दो नाम, रूप माया के अंश है ।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परामृतम् ।। (३१ सरस्वती. उप.)

आत्म भाव जाग्रत हो जाने पर देह भाव समाप्त हो जाने से फिर जहां-जहां भी मन चला जाता है वहाँ-वहाँ ज्ञानी को परमात्मा का ही भान होता रहता है ।

कैवल्य मुक्तिरेकैव परमार्थिक रूपिणी । मुक्तिकोपनिषत् १/१४

कैवल्य मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है जिसके फल स्वरूप ज्ञानी को सृष्टि काल में पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है । किन्तु शेष भक्तों की चारों मुक्ति में पुनर्जन्म होता है ।

अतः सर्वेषां कैवल्य मुक्तिर्ज्ञानमात्रेणोक्ता
न कर्म सांख्य योगोपासनादिभिः ।। (१/१४ अध्याय१ मुक्ति उप)

अतः सब प्रकार से कैवल्य मुक्ति को ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । वह कैवल्य मुक्ति ज्ञान मात्र से ही कही गयी है । कर्म, सांख्य, योग से नहीं ।

तमेव धीरा विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् बहुञ्छब्दान्वाचो विग्लापनं हितदिति ।। (बृहदा. ४/४/२१)

बुद्धिमान मुमुक्षुको उस ब्रह्म को मैं रूप जानकर उसी ब्रह्माकारी वृत्ति को बनाये रखने में ही अपनी बुद्धि को लगाना चाहिए । बहुत शब्दों

यथा रज्जु परित्यज्य सर्पं गृहणाति वै भ्रमात् ।
तद्वत्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढ धीः ।। (नाद. बिन्दु उप)

जैसे रस्सी के अज्ञानी को उसमें सर्प भ्रम भासित होता है, इसी तरह सत्य परमात्मा को अज्ञानी न देख कर जगत को ही देखता है ।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।

जो वस्तु आदि व अन्त में नहीं है वह वर्तमान संसार में दिखाई पड़ने पर भी नहीं है । जैसे अलंकार बनने के पूर्व स्वर्ण है, टूटने पर स्वर्ण ही है, तब मध्य में जो भास रहा है वह भी स्वर्ण ही है । अलंकार कुछ है ही नहीं ।

अहमैवेदं सर्वम्   आत्मैवेदं सर्वम्
ब्रह्मैवेदं सर्वम्   इदम् सर्वम् यदयमात्मा

मैं, आत्मा, ब्रह्म ही एक मात्र सर्वत्र सर्व रूप में विद्यमान है ।

अहंब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	दृश्य पापं विनाशयेत ।
अहंब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	भेदबुद्धि र्विनाशयेत ।
अहं ब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	जन्म पाप विनाशयेत ।
अहं ब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	मृत्यु पाशं विनाशयेत ।
अहं ब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	सर्व शोकं विनाशयेत ।
अहं ब्रह्मास्मि	मन्त्रोऽयं	कोटि दोषं विनाशयेत ।। (तेजो बिन्दु उप.)

मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार अज्ञानी के देहभान की तरह जिस ज्ञानी को मैं ब्रह्म इस प्रकार दृढ़ निष्ठा हो गई है उसके सभी पाप, जन्म-मृत्यु पाश, शोक, दोष नष्ट होकर एक आत्म बुद्धि रह जाती है ।

मृता मोहमयी माता जातो बोध मयंः सुतः ।
सूतकद्वय सम्प्राप्तौ कथं सन्ध्यामुपास्म हे ।। मैत्रेहि उप.

लोक में सन्तान होने अथवा मर जाने पर सूतक लग जाने पर

जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प की प्रतीति होती है एवं रस्सी ज्ञान से सर्प भ्रम निवृत हो जाता है । इसी प्रकार -

मैं आत्मा हूँ ऐसा न जानने से जगत भ्रान्ति हो रही है मैं आत्मा हूँ इस प्रकार के ज्ञान से जगत की सत्य रूप में प्रतीति नहीं होती है ।

नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो ज्ञान लक्षणम् ।
सा विद्या या विमुक्तये

मैं आत्मा हूँ, मैं देह नहीं हूँ इस निश्चय का होना ही ज्ञानी का लक्षण है । वही विद्या श्रेष्ठ है जो जीवित में समस्त बन्धनों से मुक्ति दिला सके ।

सत्संगत्वे निःसगंत्वं निसंगत्वे निर्मोहत्वम् ।
निर्मोहत्वे निश्चल तत्त्वं निश्च तत्त्वें जीवन्मुक्तिः ।।

सत्संग करने से असंगता आती है । असंगता से अहंता, ममता का नाश होता है, निर्मोहता होती है । निर्मोहता से व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार एवं जीवन मुक्ति प्राप्त करलेता है ।

नामुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि ।

बिना कर्म फल भोग किये वह कभी समाप्त नहीं होता है ।

कुशला ब्रह्मवार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिणः
ते ह्यज्ञानितमा नूनं पुनरायान्ति यान्ति च ।। अपरोक्षानुभूति १३३

जो वाचिक ज्ञानी ब्रह्मचर्चा, प्रवचन करने में तो कुशल है किन्तु उनकी ब्रह्मी वृत्ति नहीं है तथा धन परिवार में राग द्वेष से भरपूर है वे निश्चय ही अत्यन्त अज्ञानी हैं और बारम्बार जन्म लेते रहते हैं ।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्
कुर्वन्ति कर्माणि भजन्तु देवताः ।

आत्मैक्यबोधेन विना विमुक्तिर्न
सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ।। विवेक चुड़ामणि

वाला व्यक्ति तो भारवाही गधे की तरह है, जो केवल शास्त्र के तर्क–वितर्क, वाद–विवाद में फंसा रहता है । यह शास्त्रों के शब्दजाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान् गहन वन है । इसलिए किन्हीं तत्त्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्न पूर्वक आत्म तत्त्व को ही जानना चाहिए ।

अज्ञान सर्प दष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना ।
किमु वैदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रैः किमौषधैः ।। ६३ वि. चु.

अज्ञान रूपी सर्प से डँसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषध के बिना वेद, शास्त्र, मन्त्र और औषध से क्या लाभ हो सकेगा ? कभी नहीं ।

नगच्छति बिना पानं व्याधिरौषधशब्दतः ।
विनापरोक्षानुभवं ब्रह्म शब्दैर्न मुच्यते ।। वि.चू ६४

औषध के बिना सेवन किये केवल औषध शब्द का नाम जप करते रहने से या औषधि को पास में रखने से रोग नष्ट नहीं होता । इसी प्रकार 'मैं ब्रह्म हूँ' इसका अपरोक्ष अनुभव, शरीर–पीड़ा की तरह किये बिना केवल सोऽहम्, सोऽहम्, शिवोऽहम् कहने से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

प्रपंच वाच्य है ॐ उसका धारण करने वाला वाचक है । आभूषण वाच्य है स्वर्ण वाचक है । घट वाच्य है मिट्टी वाचक है । इसी तरह स्थूल, सूक्ष्म, कारण जगत् प्रपंच वाच्य है और मैं आत्मा वाचक हूँ ।

यत्र नान्यत्पपश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति सभूमा ।
यत्र अन्यत्पश्यति अन्यच्छृणोत्यअन्यद्विजानाति तदल्पम् ।।

यो वै भूमा तत् सुखम् यदल्पं तद दुःखम् (छा.उप. ७/२४/१)

जो दूसरों को देखता है, जो दूसरों को सुनता है, जो दूसरों को जानता है, वह अल्प है और दुःख रूप है । जो सर्वत्र एक आत्मा 'मैं' को

बनने के पहले सोना है, बाद में भी सोना, मध्य में अलंकार दिखने पर भी सोना ही है। इसी प्रकार पहले भी मैं, बाद में भी मैं और मध्य में भी सर्व नाम रूप मैं आत्मा ही हूँ । रस्सी में सर्प तीन काल में नहीं, रस्सी ही है । इसी प्रकार मुझमें जगत् प्रपंच किसी काल में नहीं हैं बल्कि मैं भगवान आत्मा ही हूँ । अलंकारों का नाम, रूप तो विकार मात्र बोलने हेतु है तत्त्व तो एक स्वर्ण ही सत्य रूप है ।

यो माँ पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच में न प्रणश्यति ।। गीता ६/३०

सारे चराचर को मैं आत्मा में और सारे चराचर में मुझे जो अभिन्न भाव से देखता है उससे न में छिपा हूँ न वह मुझसे छिपा है । क्योंकि हम दो नहीं है अविद्या, माया इन दो उपाधि से ही मैं एक ही जीव, ईश्वर भेद रूप कल्पित हुए है । कूटस्थ अधिष्ठान मैं आत्मब्रह्म ही एक मात्र सत्य है । जैसे एक आकाश ही घट, मठ इन दो उपाधि से घटाकाश मठाकाश इन दो नामों वाला कहलाता है जो कल्पित है । घट मठ उपाधि से रहित एक आकाश मात्र है ।

वेदान्त क्या करता है ?

- वेदान्त हमें अमरता का बोध कराता है । मृत्यु को मार डालता है एवं मृत्यु से अभयता दिलाता है ।
- वेदान्त आलस्य से मुक्ति करा उत्साह उल्लास बढ़ाता है । बुरे कर्मो से, स्वार्थ परायणता से मुक्त कर समाज कल्याण के अच्छे कर्म सिखाता है ।
- वेदान्त विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति भेदभाव मिटाकर सब में एक अमरात्मा का दर्शन करा कर एकता, प्रेम, दया, क्षमा, समता, निर्वैरता को सिखाता है ।
- वेदान्त दुःख रूप संसार को सत, चित और आनन्द स्वरूप बनाकर प्राणियों को जीवित अवस्था में परमानन्द दिलाता है ।

✵ चित्त की चंचलता से द्वेष एवं स्थिरता से राग न हो वह है परम समाधि ।

विद्या क्या करती है ?

✵ माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हित चाहती है, पत्नी के समान सुख–दुःख में साहस बन्धवाती है तथा देश विदेश में कीर्ति का प्रसार करती है ।

✵ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों–पुरुषार्थों की प्राप्ति कराती है ।

✵ अनैतिक मार्ग में जाने से रोक कर नैतिकता की शिक्षा देती है ।

✵ दुराचार, दुर्गुणों व कुसंग के दोष बताकर सदाचार, सद्गुण एवं सत्संग में जोड़ती है ।

✵ पतित समाज को उन्नति की शिक्षा देती है ।

✵ मूढ़ को बुद्धिमान, निरक्षर को साक्षर, मूर्ख को विद्वान, चरित्रहीन को चरित्रवान, मिथ्यावादी को सत्यवान, उद्ण्ण को नम्रशील, अनुशासन होने को मर्यादावान एवं कलंकी को निष्कलंक बनाती है ।

✵ किंकर्तव्य विमूढ़ जीव को आलोक में पहुंचा कर अपने उचित कर्म पथ पर चलाती है ।

✵ जीवन की उलझनों से निपटने की कला सिखाती है एवं निराशापन को आशावान बनाती है ।

✵ मन से आलस्य प्रमाद को दूरकर जीवन में उत्साह एवं कर्तव्यशील बनाती है ।

सहज सुख

जो सहज सुख है, वह साधन जन्य नहीं है, कृपा जन्य है । जैसे गहरी नींद जन्य सुख वह साधन जन्य नहीं है । कृत्रिम सुख क्षण स्थायी साधन जन्य होता है । अपना स्वरूप आत्मा व्यापक एवं सामान्य है जो सहज है । कृत्रिम सुख आने जाने वाला है । जो अनुभव होता है वह कृत्रिम

जानने को भी जानता हूँ । तब क्या नहीं जानता हूँ । सब जानता हूँ । इस तरह न जानने का तो सवाल ही न रहा । इसलिये मैं आत्मा ज्ञान स्वरूप हूँ । यह जो सहज ज्ञान है वह गुरु कृपा पर आधारित है ।

तत्त्वमसि आदि महावाक्य को समझने हेतु व्याकरण शास्त्र को समझना कठिन है । किन्तु यह जो ब्रह्म ज्ञान है जिसके लिये किसी शास्त्र के पढ़ने की जरूरत नहीं है । वृत्तिजन्य ज्ञान सीखा हुआ है यह अभ्यास न होने से कालान्तर में विस्मरण हो जाता है, इसलिये अनित्य है । किन्तु मैं आत्मा भगवान नित्य ज्ञान अखण्ड सहज है । इसके लिये मूर्ख-विद्वान् की अपेक्षा नहीं । इसमें विधि-निषेध अधिकारी अनाधिकारी की जरूरत नहीं है ।

मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियां इन सब को थकावट हो जाती है । परन्तु मुझ ज्ञान आत्मा के जानने पने में कभी थकावट नहीं होती । जानना क्रिया है जानने वाला आत्मा मैं इससे भिन्न हूँ ऐसा नहीं । स्वभाव, स्वभावी से भिन्न नहीं । देखना ही आंख है और आंख ही देखता है । देखना और आंख दो नहीं, इसी प्रकार जाननापना आत्मा है और मैं आत्मा का जाननापना स्वभाव है । बिना किसी साधन के यह जानना पना सिद्ध है, इसलिये यह सहज ज्ञान है । इस जानने पने में कभी कोई कमी याने थकावट नहीं आती । यह जानना पना आदि, मध्य और अन्त से रहित अखण्ड है **'एक अखण्ड ज्ञान सीतावर'** । सद्गुरु शिष्य पर कृपा करके इसी नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा का बोध करा देते हैं कि मैं आत्मा सर्वदा ज्ञान स्वरूप हूँ ।

अपने आपको जीव मानना या कोई भी उपाधिवान मानना ही बन्धन है । और अपने आपको मैं आत्मा रूप जानना ही मोक्ष है । अपने आप को जैसा हूँ वैसा ही मानना मोक्ष है । गति का अर्थ मोक्ष है । नाम, रूप का त्याग करना ही जीवित अवस्था में मरना है और मरने के बाद ही समस्त दुःखों से मोक्ष है ।

सहज भक्ति

लगाओ यह सहज पद नहीं है । हर अवस्था, हर काल, जो एकरस रहे, वही सहजावस्था है ।

देखो चित्त को निर्विकल्प करने के लिये अष्टांग योग में कितना कठिन साधन है । यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि और जहाँ अपने आप में सब मिलालिया तो फिर एकदम सहज निर्विकल्पता आ गई । जब यह अनुभव हो गया कि मुझसे भिन्न कुछ नहीं है तो फिर इस अनुभव के होते ही न देह रहा, न मन रहा, न चित्त रहा, न जीव रहा और न ब्रह्म रहा । अर्थात अपने स्वरूप में एक बाल बराबर अन्य के लिये स्थान नहीं है । इसीलिए आत्मा को कूटस्थ, आनन्द घन, ज्ञान घन, सत घन कहा जाता है ।

जो चीज जैसी है, उसे वैसी न मानकर, अन्य मानलेना ही अध्यास है । जैसे रस्सी को सांप मान लेना अध्यास है । इसी प्रकार मैं को देह मान लेना अध्यास है । देह मान कर फिर स्त्री, पुरुष, हिन्दु, ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, जवान, बूढ़ा आदि का अभिमान हो जाता है । सर्वत्र एक परमात्मा का निश्चय होते ही अध्यास का नाश हो जाता है एवं अध्यास के नाश से अभिमान का नाश हो जाता है । अस्तित्व आत्मा पर जितने विकल्प हैं उन सब विकल्पों के अभाव हो जाने पर केवल आत्म सत्ता ही शेष रह जाती है । यही शान्त पद है, यही निर्विकल्पता है । मैं, आत्मा पर ही सर्व विकल्प हुए थे । जिस प्रकार स्वर्ण न हो तो आभूषणों का विकल्प एवं मिट्टी न हो तो घड़े का विकल्प किस पर रहेगा ? इसी प्रकार जब मैं आत्मा का अधिष्ठान रूप से बोध हो गया तो विकल्प अध्यस्त सम्पूर्ण शान्त स्वतः हो गया ।

यदि सन्त कृपा से, गुरु कृपा से, भगवान आत्मा को मैं रूप से जान लिया तो अविरल भक्ति प्राप्त हो गई जिसे कहा जाता है **'प्रभु प्रसाद कोउ पाउ'** बस अभी से तुम भगवान के ध्यान, धारणा, समाधि, मनन, निदिध्यासन चिन्तन आदि कुछ न करो । इस भक्ति को जान लेने पर जीव कृतकृत्य हो जाता है । यही भगवान की सहज भक्ति है। यदि आत्मा को

भजन

आतम देव बसे हृदय में
अज्ञानी कैसे जाने रे ।।
आतम देव ...

शोक मोह अरु काम क्रोध भय
आकाश धर्म कहावे रे ।
घटना, बढ़ना, उठना, चलना
धावन वायु बतावे रे ।।
आतम देव ...

तृषा, कान्ति अरु आलस निद्रा,
क्षुधा, तेज कहलावे रे ।
रज वीर्य अरु लार पसीना
मूत्र जल बनावे रे।।
आतम देव ...

त्वचा मांस अरु नाड़ी लोम
भूमि हाड़ बनावे रे
तू् आतम इस देह से न्यारा,
ज्यों घट द्रष्टा घट से रे ।।
आतम देव ...

देहाभिमानी धान समान है,
ज्ञानी, को चावल जानो रे ।
देहाभिमानी जन्मता मरता,
ज्ञानी मुक्ति को पाता रे ।।
आतम देव ...

मैं से मेरा पृथक रहत है
ज्यो घट द्रष्टा घट से रे
देह का द्रष्टा देह से न्यारा
निरंजन स्वरूप बतावे रे ।
आतम देव ...